शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2320 – 0871
17 सितंबर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ़्रीड रिसर्च जर्नल

# प्रसाद और पंत के काव्य में नारी चित्रण

चंद्रकांत तिवारी (यूजीसी नेट)
एम.बी.जी.पीजी. कॉलेज, हल्द्वानी
कुमाऊँ विश्वविद्यालय
नैनीताल, भारत

## शोध संक्षेप

*भारतीय समाज में प्रारंभ से ही नारी के गौरव को मान्यता प्रदान की जाती रही है। इतिहास के तथ्य इस यर्थाथ की पुष्टि करते हैं, कि जिस युग में नारी के महत्व को उपेक्षित करके, उसके गौरव को धूमिल करने का प्रयास किया गया उस युग का समाज शीघ्र ही विकृत होकर सुख, शांति और समृद्धि से कोसों दूर चला गया। वस्तुतः सृष्टि की रचना में नारी और पुरुष दोनों का ही समान महत्व है। नारी के अभाव में सृष्टि की उतपत्ति, रचना अथवा विकास का प्रश्न ही नहीं उठता। यही कारण है कि कम से कम वैचारिक दृष्टि से प्राचीन युग से ही नारी के महत्व को प्रतिष्ठित किया जाता रहा है। मनुष्य नारी के बिना सर्वथा अपूर्ण है, विवाह के उपरांत पत्नी ही उसे पूर्ण बनाती है। प्रस्तुत शोध पत्र में प्रसाद और पन्त की नारी विषयक दृष्टि का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।*

## प्रस्तावना

महाभारत में नारी को धर्म, अर्थ और काम का मूल मानते हुए पुरुष की अद्र्धांगिनी के रूप में स्वीकार किया गया है। वैदिक युग में नारी का अधिकांशतः देवी रूप में चित्रण हुआ है।रामायण काल में नारी के रूपों में विस्तार बढ़ता जाता है। महाभारत काल में माता की सर्वोच्च स्थिति बतलायी गयी है। कुंती, गांधारी, माद्री आदि मातृत्व गुुणालंकृता नारियाँ हैं।

बौद्ध काल तक आते-आते नारियाँ घर की चारदीवारी को लांघ कर पुरुषों के समान ही उन्मुक्त वातावरण में जीवन जगत की समस्याओं का समाधान करने के लिए निकल पड़ी।अपभ्रंश काल में नारी की उपेक्षा होने लगी। कन्या जन्म को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। इसलिए लोग कन्या विहीन घर को अधिक सौभाग्य संपन्न समझते थे। आदिकाल में नारी को माया का पर्याय एवं विलासिता का पर्याय समझा जाने लगा। कई कवियों ने विलासिता पूर्ण काव्यों की रचना कर लोगों की नारी के प्रति दृष्टि ही बदल दी।

मध्यकाल में नारी की स्थिति में बड़ा परिवर्तन हुआ। बाल-विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा आदि अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुके थे। रीतिकाल में तो नारी का मांसल सौंदर्य कवियों का आकर्षण बिंदु रहा। इस काल में कवियों ने अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए नारी के रसिक, प्रिया स्वरूप को ही प्रस्तुत किया। इस युग में कवियों के लिए नारी मात्र उपभोग की वस्तु समझी जाने लगी। आधुनिक काल आते-आते नारी की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन होने लगे। उसका पथ चतुर्मुखी हो गया। आधुनिक भारतीय नारी पुरातनता की केंचुली उतारकर युग की आवश्यकतानुसार प्रत्येक क्षेत्र में अपने कदमों को अग्रसर किये हुए है।

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल से लेकर वर्तमान दौर के साहित्य में नारी की स्थिति प्राचीनता से लेकर नवीनता की ओर प्रेरित हुई है। प्राचीन भारत में नारी सच्चे अर्थों में पुरुष की अद्र्धांगिनी थी, सहधर्मिणी थी और देवी तथा माता के रूप में पूजी जाती थी। परंतु मध्यकाल में नारी को विलास की सामग्री समझा जाने लगा। आज आधुनिक युग में हिंदी की संपूर्ण विधाओं में नारी का चित्रण विभिन्न रूपों में किया गया है। नारी अब अबला नहीं है, वह पुरुष समाज के संग कंधे से कंधा मिलाकर चलने को तत्पर है।

## प्रसाद और पन्त के काव्य में नारी

प्रसाद ने नारी को न केवल पुरुष के समतुल्य माना है, वरन् उसे पुरुष की अपेक्षा और अधिक ऊर्जावान, प्रकृतिस्वरूपा एवं शक्तिस्वरूपा के रूप में चित्रित किया है। जहाँ एक ओर उनके नारी प्रधान उपन्यासों, कहानियों एवं नाटकों में नारी को पुरुष से कहीं श्रेष्ठतर रूप में चित्रित किया गया है, वहीं 'कामायनी' जैसे श्रेष्ठ महाकाव्य में नारी को हृदय और बुद्धि का प्रतीक माना है। यही कारण है श्रद्धा और इड़ा के समकक्ष मनु का चरित्र बौना दिखाई देता है। प्रसाद की नारी विषयक दृष्टि नारी जाति को महान गौरव प्रदान करती है। इसीलिए वे उसे जीवनदायिनी एवं पुरुष के जीवन में अमृत स्वरूपा मानते हैं। इस दृष्टि से प्रसाद ने अपने काव्य में नारी के उज्जवल पक्ष को विशेष रूप से अभिव्यक्ति प्रदान की है।

कविवर पंत ने अपनी रचनाओं में नारी के खोये अस्तित्व, उसकी धूमिल पड़ी अस्मिता को जगाने का प्रयास किया। मध्ययुग में नारी के प्रति दृष्टिकोण धीरे-धीरे सीमित दायरे में समाने लगा। नारी को लोगों द्वारा उसकी काया तक ही देखने का प्रयत्न किया जाने लगा। उसकी दुनिया उसके घर आंगन तक ही बनी रही। उसे मात्र भोग की सामग्री समझा जाने लगा। नारी की अपनी वैयक्तिक भावनाओं को पूर्ण रूप से दबाया गया। उस पर तरह-तरह के बंधन लगा दिए गए। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी तक भारतीय धर्म-संस्कृति एवं साहित्य में उतार-चढ़ाव की स्थिति बनी रही।

कामायनीकार प्रसाद सच्चे अर्थों में ईश्वर का प्रसाद थे। उन्होंने 'कामायनी' जैसी कालजयी कृति साहित्य जगत को तो दी ही साथ ही उनकी आरंभिक रचनाओं में 'झरना', 'आँसू', 'लहर' एवं 'प्रेम पथिक' की अपनी एक विशिष्ट पहचान है। 'कामायनी' जो एक जीवन काव्य है उसको विस्तृत एवं सुदृढ़ आधार प्रसाद की आरंभिक कृतियों ने ही दिया।

'कामायनी' में श्रद्धा, मनु और इड़ा के माध्यम से कवि प्रसाद एक अपूर्व काव्य सृष्टि को जन्म देते हैं। श्रद्धा 'कामायनी' की मुख्य नारी पात्र है। वह जिस सभ्यता का आरंभ करती है उसमें मानव सभ्यता, दया, ममता, मधुरिमा, विश्वास, समपर्ण, सेवा, जीवन, उत्सर्ग आदि प्रमुख हैं। प्रसाद जी श्रद्धा के माध्यम से कहते हैं कि जीवन के आरोह-अवरोह में जब नैसर्गिक रूप श्रद्धा भाव का अविर्भाव होगा तभी वह मानव जीवन का मूल्य बनेगा।

प्रसाद का संपूर्ण साहित्य कहीं न कहीं वेदना की भावानाओं को स्पर्श करता है। ऊपर से देखने पर तो लगता है कि उनकी वेदना सर्वत्र व्याप्त है लेकिन वह तलाश अपनी प्रेयसी की ही कर रही है। परंतु यदि हम गंभीरता से जानना चाहें कि यह कवि इतना वेदना-विकल क्यों प्रतीत होता है या उसके द्वारा सृजित पात्र क्यों इतने यथार्थ प्रतीत होते हैं क्यों उसके नारी पात्र इतने सशक्त हैं अगर हम कवि की वेदना के विस्तार का

यथार्थ देखें तो उसके द्‌वारा सृजित पात्र जो हमें 'कामायनी' की श्रद्धा के सौंदर्य एवं इड़ा की बुद्धिमता एवं 'आंसू' की प्रेयसी के रूप में, ध्रुवस्वामिनी और कोमा को अलग-अलग किस्म की व्यथा में, बेड़ी और गुण्डा की त्रासदी में, यमुना और विजया के भटकाव में देवसेना और मालविका की आहुति में, घीसू और सुजाता की तड़प में अर्थात तरह-तरह की विवशताओं, बंधनों और पीड़ाओं की आकृति में मिल जाएगी। 'आँसू' और 'लहर' की वेदना जिस व्यक्तिगत राग में भीगी दिखाई देती है, उसे यदि गद्‌य के इन तमाम परिप्रेक्ष्यों में देखा जाए तो क्या वह मात्र रूमानी, व्यक्तिवादी या एकांतिक कही जा सकेगी ?

अंततः इस बात में कोई शक नहीं कि नारी सौंदर्य चेतना का उज्जवल वरदान देने वाला कवि आँसू की कल्पना लोक की यथार्थ भूमि पर प्रेम पथिक की भाँति कानन-कुसुमों से होते हुए नारी सौंदर्य के चित्रों की धारों पर करूणा एवं वेदना के झरनों से गिरते आँसू रूपी मोती को कामायनी रूपी विस्तृत महासागर में लहरों के संग गोते खाता हुआ; डूबता-तैरता प्रेम रूपी अमृत की तलाश करता है। ऐसा प्रतीत होता है. मानों प्रेम सौंदर्य के अमर गायक कवि प्रसाद जब नारी सौंदर्य का चित्रण करते हैं तो वह उसे अपने रक्त की लाली से सींचते हुए आत्मसात करते चलते हैं।

व्यक्ति के सम्मुख जब कोई बड़ा लक्ष्य हो और उसे प्राप्त करने के लिए उसे अपने संस्कारों से समझौता न करना पडे तो लक्ष्य मानवता के आदर्श धरातल पर प्राप्त हो ही जाता है। तब विश्व के समस्त राष्ट्रों एवं देशों के स्त्री-पुरुष अवचेतन मन के बंधनों से मुक्त हो जाते हैं। स्त्री-पुरुषों का सामूहिक रूप से देश-हित के कार्यो में संलग्न रहना ही बड़ी वास्तविकता बन जाता है। 'लोकायतन' में कविवर पंत जी के यही विचार सर्वप्रमुख हैं।

इस प्रकार पंत जी की परिवर्तित जीवन दृष्टि उनकी नारी विषयक दृष्टि को भी समय के सापेक्ष परिवर्तित करती चलती है, परंतु मर्यादा एवं नैतिकता रूपी आवरण के भीतर। 'सत्यकाम' तक आते-आते कविवर पंत की वैचारिक दृष्टि में मानवीय भावनाओं एवं संवेदनाओं को लेकर विचारों का परिपक्व होना उनकी इस रचना का प्रत्यक्ष प्रमाण है। जिसे कवि ने धरती की कथा कहा है। जो सच्चे अर्थों में विधाता की रची धरती की पीड़ा का स्पष्ट उत्तर देता है। कविवर पंत ने इस कृति के विज्ञापन में कहा है- सत्यकाम मूलतः धरती के जीवन का काव्य है। नारी सौंदर्य का ऐसा सागर है जिसमें प्रेम रूपी अमृत भी है और वासना रूपी विष भी है यह तो पुरुष की पात्रता है कि वह इनमें से क्या ग्रहण करता है। नारी सौंदर्य की मूर्ति है। वह अपने मोह पाश से पुरुष को अपने आप में आकर्षित करने मेंें सक्षम है। 'सत्यकाम' में ऋचा नामक नारी पात्र सौंदर्य की प्रतिमूर्ति है। उसके मोह पाश में पड़कर सत्यकाम किसी अज्ञात आकर्षण से उसकी ओर खिंचा चला आता है। दोनों परस्पर बातें करते हैं। एक दूसरे का परिचय होता है। दोनों में प्रेम की अगंन इस कदर हावी हो जाती है कि ऋचा सत्यकाम को संभोग के लिए प्रेरित करती है।

सत्यकाम में साधना का सत्य तथा काव्य का सत्य तदाकार हो गये हैं। मूलतः यह एक तापस की भावनाओं को वाणी देने वाला बोध-काव्य है। इसमें चित्रित नारी पात्र जाबाला एवं ऋचा सत्यकाम की पथ प्रदर्शिका के रूप में प्रकट होती हंै। जाबाला माँ के सारे कर्तव्यों को तत्परता से

पूर्ण करती है तो ऋचा स्वयं समयानुसार रूप बदल-बदल कर सत्यकाम के सम्मुख आती है और उसे उचित-अनुचित का ज्ञान कराती है।

ऋचा का चित्रण दिव्यस्वरूपा एवं शक्तिस्वरूपा के रूप में किया गया है। 'लोकायतन' एवं 'सत्यकाम' में मुख्य अंतर यही है कि 'लोकायतन' में कवि के संपूर्ण जीवन-दर्शन का विस्फोट हो चुका था, "सत्यकाम" में वह व्यावहारिक रूप में परिणत हो जाता है।

नारी जो इस धरती की पीड़ा को अपने में आत्मसात कर सकने में सक्षम है उसे वैदिक युग से लेकर आज तक भारतीय साहित्य में विविध रूपों द्वारा देखा जाता रहा है। परब्रह्म ने सृष्टि के निर्माण के लिए एक-दूसरे के पूरक के रूप में नर व नारी की रचना की है तथा दोनों को अलग-अलग गुणों से विभूषित किया है। कवि ने अपनी सर्वप्रथम रचनाओं में नारी के मातृ पक्ष को प्रमुखता से उजागर किया है। अगर धरती में कहीं स्वर्ग है तो वह माँ की गोद में है। शिशु के लिए माँ की गोद से प्रिय स्थान शायद ही अन्यत्र कोई दूसरा हो। कवि का मन भी शिशु की भाँति अपनी माँ के आँचल में रहने को है उसे अपनी माँ सर्वत्र प्रतीत होती है।

पंत जी की मातृभावना में शैशवकालीन सरल भोले भावोद्गार हैं। एक ओर कवि प्रकृति के विराट सौंदर्य पर रीझता है तो दूसरी ओर जननी जन्म भूमि की गौरव गरिमा के समक्ष श्रद्धानत् भी होता है। वह गीतों के रूप में अपनी श्रद्धा के फल इस प्रकार कल्याणकारी चरणों पर चढ़ाता जाता है कि शायद जीवन भर यह पुण्य समर्पण का कार्य करने के पश्चात भी वह इस ऋण से उऋण न हो सकेगा।

कविवर पंत जी ने नारी के प्रत्येक रूप को आत्मा के स्तर से गहन अनुभूत किया है। माँ के रूप में जहाँ उसे नारी दिव्यस्वरूपा, सृष्टिस्वरूप प्रतीत होती है वहीं वह नारी के प्रेम रस का पान करना भी जानता है। कवि जब प्रेयसी के चित्रों को साकार करता है तो वह चित्र नहीं रह जाते वह तो दिव्य रूपधर कर बोलती हुई प्रतिमा सी प्रतीत होती हैं।कवि की प्रेयसी उसकी विचारों की मात्र कल्पना ही नहीं अपितु वास्तविक धरातल को भी स्पर्श कर उसके नयनों में समा चुकी है। कवि का प्रेयसी के प्रति प्रेम नितांत सच्चा एवं आदर्श की यथार्थ भूमि को स्पर्श करता है। किसी भी वस्तु को प्यार करना मानवीय प्रकृति की एक मधुर आवश्यकता है। नारी का प्रेयसी रूप वस्तुतः उसकी प्रेम और श्रृंगार की सजीली भावनाओं का प्रतिरूप होता है। कहीं वह प्यार करती है, कहीं अपने व्यापक सौंदर्य से व्यक्ति को प्रेमोंमुख बना देती है, छायावादी कवि पंत जी ने सौंदर्य की एक नई चेतना लेकर काव्य रचना की और इसी व्यापक सौंदर्य चेतना के कारण उन्होंने प्रेम को जीवन दर्शन के रूप में स्वीकार कर नारी के प्रेयसी रूप को चिरनवीन महिमा से अभिषिक्त किया। कवि की प्रेयसी तो कल्पना के कानन की रानी ही बन बैठी।

'ग्रंथि' तथा 'पल्लव' की 'उच्छवास' एवं'आँसू' कविताओं में कवि की यह सरलता और भोली प्रेयसी अप्राप्य रहते हुए भी मानस पटल पर छाई रहती है।

जिस समय छायावाद अपने व्यष्टि की साधना में तन्मय जगत् की वास्तविकता से बेखबर था उस समय 'रोटी का रोग' और 'क्रांति की आग' लिए प्रगतिवाद आगे आया और उसने प्रत्येक साहित्यकार को झकझोर के रख दिया। पंत जी भी अछूते न रहे, अपनी प्रगतिवादी रचनाओं में उन्होंने समाज की उस भयावह स्थिति को उजागर किया, जो नारी जाति को सदियों से दबा-

कुचला मजबूर एवं लाचार समझती थी। प्रगतिशील कवि पंत ने द्विवेदी युग की अचल नारी को गति भी प्रदान की और छायावाद की सूक्ष्म भावमयी एवं अमूर्त नारी को एक सजीव आकार भी प्रदान किया। उसने नारी को योनि मात्र की भूमिका से ऊपर उठाकर उसके मानवी रूप की घोषणा की। प्रगतिवादी कवि नारी के मानवी रूप के प्रति ऐसी चाटुकारी भरी बातों को अवहेलना का भाव ही मानता है।

छायावाद से प्रारंभ हुई कवि की रचनाधर्मिता प्रगतिवाद से होते हुए नवीन चेतना के मार्ग की ओर तीव्रता से बढ़ने लगी। अब कवि की दृष्टि नारी चेतना, नारी विमर्श के चर्मोत्कर्ष पर थी। आज कवि जब मानवीय सभ्यता को नग्न आँखों से देख रहा था तो हृदय उस ओर स्वाभाविक रूप से ही जा मुड़ा जहाँ इस मानवता को आघात हो रहा था। कवि के विचारों में मौलिक परिवर्तन आना उनका अरविंद दर्शन से प्रभावित होना था। इस दर्शन के सानिध्य में आकर पंत जी का मानसिक क्षितिज व्यापक, गहन एवं सूक्ष्म बन गया।

निष्कर्षतः कविवर सुमित्रानंदन पंत के काव्य को पढ़ने के बाद उसे किसी एक रूप या एक दिशा देना न्यायसंगत न होगा। कवि की वैचारिक दृष्टि व्यापक होने के साथ-साथ भावनाओं के तारों को भी स्पर्श करती हुई प्रत्येक मस्तिष्क में अपार बिंब को उजागर कर देती है। कवि की नारी के प्रति जो दृष्टि है वह समय के सापेक्ष नित-नित बदलती रही है। छायावाद का कवि अब नवचेतना युग तक आते-आते विचारों का गुंफन लिए अपनी बातें जनता से कहता है। नारी के कमनीय नयन, कटीली कमर, रसीले होंठ, उन्नत वक्ष स्थल समय दर समय उसे व्यापकता प्रदान कराते हैं। अब कवि नारी स्वातंत्र्य, नारी चेतना, नारी विमर्श की बातें पुरजोर से करता है।

पंत जी स्वयं भी उस दौर से गुजर रहे थे। जब देश में पूँजीवाद, सामंतवाद और साम्राज्यवाद के दुष्परिणाम स्वरूप नारियों की दयनीय स्थिति और भी दयनीय हो रही थी। इन विषमताओं को चीरता हुआ कवि का प्रगतिशील दृष्टिकोण गर्म लोहे पर एक करारी चोट के समान था। 'युगांत' प्रारंभ होते ही कवि का नारी विषयक दृष्टिकोण पौरूषमय हो गया था।

इस बात में कोई शक नहीं कि नारी विषयक बातों को लेकर कविवर पंत प्रगतिवाद में जो चर्चा करते हैं उसकी एक धारा को लेकर 'कामायनी' की श्रद्धा भी संघर्षरत बनी रहती है और स्वयं नारी के अधिकारों को लेकर इड़ा उसको पूर्ण सहयोग देती है। कविवर पंत ने तो अधिकांशतः नारी मुक्ति का उद्घोष ही किया किंतु प्रसाद द्वारा रचित 'कामायनी' की श्रद्धा एवं ध्रुवस्वामिनी स्वयं सीमाओं पर प्रहरी की भाँति डटकर पुरूष सभ्यता के समक्ष एक चुनौती प्रस्तुत करती हैं और अपना अस्तित्व एवं शक्ति का प्रदर्शन भी करती हैं।

निस्संदेह कामायनी आधुनिक युग की श्रेष्ठ कृति है। यह छायावादी युग की चरम उपलब्धि है और प्रसाद जी की काव्य कला का उत्कृष्ट प्रमाण है। इस कृति में मानवता की चिरंतन पुकार को अभिव्यक्त किया गया है। यह पुकार उन स्त्रियों का मार्ग दर्शन कर रही है जो निराश, भयग्रस्त, भ्रमित और विविध विसंगतियों के साथ जीवन बिता रहीं हैं। इतना ही नहीं, 'कामायनी' के माध्यम से कवि प्रसाद ने विजयिनी मानवता हो जाए का अमर संदेश भी प्रसारित किया है और आनंद अखण्ड घना था को चरम सोपानों पर ले जाकर मानव को सुख और शांति का मंगल मय

संदेश भी दिया है। छायावादी युग की यह एक अकेली ऐसी रचना हैं जिसमें संपूर्ण काव्यधारा का सारतत्व और निचोड़ समाहित हुआ है।

'कामायनी' की प्रमुख पात्र श्रद्धा मनु के जीवन में प्रेरक शक्ति के रूप में उपस्थित होती है और उसे कर्म की प्रेरणा देती है। वह यह भी समझाती है कि यह जीवन सत्य है और निरंतर कर्म करते रहने से ही जीवन को सम्यक रूप से जिया जा सकता है। एक प्रकार से मनु के निराशा से भरे जीवन में आशा का संचार करती हुई श्रद्धा उन्हें जीवन की ओर प्रेरित करती है। यह स्पष्ट कह देती है कि "तय नहीं केवल जीवन सत्य करूण यह क्षणिक दीन अवसाद।" श्रद्धा मनु को जीवन की ओर प्रवृत्त करती हुई, कर्म की प्रेरिका बनती हुई उन्हें निराशा के अंधकार से निकालने का प्रयत्न करती है। यह श्रद्धा रूप में नारी का सच्चा एवं आदर्श गुण है। वह इसमें सफल भी होती है, और मनु जीवन की ओर प्रवृत्त होते हैं।

प्रसाद गंभीर चिंतन एवं जीवन-द्रष्टा थे मूल रूप में वे कवि थे। भूत और वर्तमान की गतिशीलता को आत्मसात कर भविष्य के निर्माण के प्रति सतर्कता का भाव रखते हुए साहित्य-निर्माण में तल्लीन प्रसाद का व्यक्तित्व निरंतर नवीनता, स्वच्छता एवं मौलिकता का ही पाठ पढ़ाता हुआ दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने अपने नाटकों के ऐतिहासिक परिवेश में मानव जीवन की विशद व्याख्या काव्यात्मक भाषा एवं गद्य-गीत शैली में प्रस्तुत की है।

प्रसाद ने मनोवैज्ञानिक आधार पर अंतर्द्वंद्वों को प्रकट कर, चरित्र-चित्रण में जो स्वाभाविकता और वैचित्र्य दिखलाया है वह उनकी सूक्ष्म दृष्टि का ही द्योतक है।

प्रसाद के विचारों में विकास का क्रम दीख पड़ता है। प्राचीन परंपरा एवं संस्कृति के पक्षपाती प्रसाद का विचार समय की गति के साथ बदल जाता है। 'ध्रुवस्वामिनी' का नारी-आदर्श उनके अन्य नाटकों की तुलना में भिन्न है। इस नाटक में नारी के समक्ष क्लीव, कायर और कापुरुष पति द्वारा शंकालु होकर शत्रु को अपनी पत्नी सौंप देने की भावना का विरोध है। यहाँ नारी पति के व्यवहारों से क्षुब्ध होकर केवल नियति को ही सब कुछ मानकर चलने की पक्षपातिनी नहीं है अपितु वह धर्म-व्यवस्था, सामाजिक संबंध, वैवाहिक नियमों की सीमा को तोड़कर अपनी साहसिकता का परिचय देते हुए आधुनिक नारी के समकक्ष आ बैठती है। वह विवाह की एकनिष्ठता से मोक्ष चाहती है और अंत में धार्मिक रूप से सफल होती है।

प्रसाद का मत है कि नारी के सम्मान आत्म-गौरव की रक्षा हर प्रकार से होनी चाहिए। यदि पति इसमें असमर्थ हो तो पत्नी द्वारा पति की रक्षा सर्वोपरि ध्येय है। उसके लिए लौकिक बंधनों तक की अवहेलना कर दी गई है। ध्रुवस्वामिनी किसी को भी अपनी रक्षा करते न देखकर स्वयं उस कार्य में प्रवृत्त होती है।

इस प्रकार प्रसाद जी ने नारी के नैतिक आदर्श के सभी सद्गुणों-दया, त्याग क्षमा, सहनशीलता, एकनिष्ठता, विश्वास, शरणागति आदि को मानकर भी उनका आचरण परिस्थितियों के अनुसार करने का ही विश्वास प्रकट किया है। 'स्वत्व रक्षा का प्रश्न उपस्थिति होते ही इन सबको छोड़ देना श्रेयस्कर माना गया है। नारी की आज्ञाकारिता की परीक्षा उसे समाप्त करके नहीं ली जा सकती है। उनका मत है कि नारी से नैतिकता की आशा करने वाला पुरुष भी नीति एवं धर्म का पालक होना चाहिए। यदि पुरुष ऐसा नहीं करता तो नारी भी 'स्वŸव' एवं सम्मान रक्षा के लिए पुरुष का विरोध करने का पूर्ण अधिकार रखती है।

ISSN 2320 – 0871
17 सितंबर 2015

स्त्री-पात्रों के चित्रण में प्रसाद ने एक भिन्न दृष्टि से काम लिया है। उन्होंने भारतीय चिंतन और स्वानुभव के आधार पर नारी को पराशक्ति, प्रकृति और माया के रूप में स्वीकार किया है। मल्लिका, मालविका, देवसेना, वाजिरा, वासवी आदि के रूप में उन्होंने उस नारी की कल्पना की है जो पुरुष के हृदय पर शासन करती है और उसका पथ प्रशस्त कर उसे भ्रष्ट होने से बचाती है। वासवी, पद्मावती, मनसा, मंदाकिनी, कमला, देवकी, कार्नेलिया, रामा, वाजिरा आदि नारी पात्रों के औदात्य की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

इसी कारण उन्होंने 'कंकाल' और 'तितली' जैसे यथार्थवादी उपन्यास में यथार्थ नारी चरित्र लिखकर तत्कालीन मानव-जीवन की दुर्बलता एवं सबलता, विषमता एवं समता, सदाचार एवं अनाचार, पर दुःख कातरता एवं पर-पीड़ित अकर्मण्यता एवं कर्मठता, परावलंबन एवं स्वावलंबन, पराधीनता एवं स्वाधीनता, उत्थान एवं पतन, आशा-निराशा, स्वस्थता एवं अस्वस्थता, स्वार्थ एवं परमार्थ, रूढ़िवादिता एवं विचार-स्वातंत्र्य सहयोग एवं असहयोग व्यावहारिकता एवं अव्यावहारिकता, स्वर्ग और नरक आदि सभी पहलुओं पर विचार किया है और नारी चरित्र एवं चेतना को जाग्रत करके उसका आधिपत्य स्थापित करने का सफल प्रयास किया है।

पंत जी का गद्य साहित्य कई विविधता लिए हुए है। इसमें नारी के विविध रूपों का वर्णन विविध प्रकार से किया गया है। 'हार' उपन्यास में लेखक ने एक आदर्श पत्नी के रूप में 'विजया' को प्रस्तुत किया है तो दाम्पत्य जीवन की अभिव्यक्ति को साकार करती 'दम्पत्ति' कहानी कहानी कला एवं चरित्र चित्रण की दृष्टि से सफल है। पत्नी के मर्यादित आचरण को उजागर करती कहानी 'अवगुण्ठन' एक ऐसी कहानी है जिसमें व्यक्ति के संस्कारों, जर्जर सामाजिक रूढ़ियों, व्यवहार शून्य सैद्धांतिक मान्यताओं एवं नारी के स्वतंत्र आत्म-प्रबुद्ध व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है। तो वहीं 'हार' उपन्यास एक ऐसी प्रेम कहानी है जिसमें दो समानांतर प्रेम कथाएँ प्रेम की त्रिकोणात्मक स्थिति उत्पन्न करती हैं।

कविवर पंत का मानना था कि नारी को मात्र काम भोग की वस्तु तथा समस्त पापों एवं बाधाओं का कारण मानना, मध्ययुगीन मानसिकता की सबसे बड़ी भूल है। नर-नारी का आकर्षण, युग्म-भावना, देह-सुख आदि सभी कुछ स्वाभाविक एवं मानव सत्य हैं। वस्तुतः देखा जाये तो पंत की अंतश्चेतना के शुभ्र शिखर तथा भारतीय दर्शनों की मोक्ष परिकल्पना में कोई विशेष अंतर नहीं है। अगर मानवता इन बंधनों से हटकर मुक्त हृदय से सोचे तो एक ऐसी शोभा रेखा खिंची जा सकती है जिस पर मनुष्यत्व का स्वर्णिम आदर्श स्थापित किया जा सकता है। नर-नारी के जीवन संबंधों को आधार बनाकर कविवर पंत जी ने राग भावना का परिष्कार करने का निर्देश दिया। कवि के ये विचार नितांत मौलिक हैं जो कहीं न कहीं अरविंद दर्शन के प्रभाव की छाप छोड़ते हैं।

प्रसाद की 'कामायनी' के विस्तृत अध्ययन के फलस्वरूप कहा जा सकता है कि प्रसाद ने जो नारी पात्र लिए हैं वे पौराणिक तो हैं लेकिन प्रसाद ने उनमें नारी सुलभ विशिष्ट गुण भरे और एक आदर्श के रूप में उन्हें प्रस्तुत किया। भारतीय संस्कृति के परम पुजारी प्रसाद अपने नारी पात्रों के माध्यम से सफल एवं सुदृढ़ उपदेश अप्रत्यक्ष रूप से दे गए, जिसका ज्ञान 'कामायनी' के सूक्ष्म एवं तुलनात्मक अध्ययन से मिलता है। अतः कहा जा सकता है कि 'कामायनी' इस युग

की श्रेष्ठतम काव्य-कृति है। इसमें चित्रित नारी श्रद्धा एवं इड़ा आधुनिक नारियों के लिए आदर्श की प्रतिमा साबित हो सकती है। प्रसाद युगीन सामंतवादी व्यवस्था में 'कामायनी' के नारी चरित्र श्रद्धा और इड़ा कवि के विचार दर्शन की आधुनिकता को सिद्ध करते हैं। नारी स्वाभिमान और सामंजस्य की प्रतिष्ठा प्रसाद ने अपने स्तर पर की है। प्रसाद ने जब अपने काव्य में नारी का चित्रण किया है तो अधिकांशतः उन्होंने माधुर्य एवं कोमल भावनाओं को ही प्रक्षय दिया है परंतु अपने गद्य में नारी के विभिन्न चित्रों को यथास्थिति, यथास्थान, यथोचित रूप में प्रकट किया है; तो वहीं दूसरी ओर छायावाद की काल्पनिक गहराईयों से बाहर निकलकर प्रगतिवाद की जमीन पर नवचेतना का संदेह सुनाने वाला कवि पंत स्वयं में समाज विरोधी तब बन जाता है जब उसकी कल्पना के कानन की रानी को कोई अपमानस्वरूप बुरी नजर से देखता है। निस्संदेह नारी विषयक दृष्टिकोण को लेकर पंत के विचार नारी शक्ति की प्रगति के सूचक हैं।

निस्संदेह पंत जी प्रहरी की भाँति नारी मुक्ति की प्रबल दावेदारी करते दिखाई देते हैं। नर-नारी के राग संबंधों को विगत युगों में अति संकीर्णता में बांध दिया गया है। नारी को घर परिवार के बंध घेरे में रखकर, उसका शोषण किया गया तथा उसे पुरुष की भोग्या मात्र ही समझा गया। पंत जी का मानना है कि संपूर्ण सामाजिक विकास के लिए नारी उद्धार और नारी-पुरुष समानता को भी व्यावहारिक रूप में स्थापित करना है। 'सत्यकाम' की पृष्ठभूमि स्वयं इस बात की साक्षी है, तो "लोकायतन" एक जीता जागता प्रमाण।

'कंकाल' की घंटी, 'सत्यकाम' की ऋचा, 'लोकायतन' की सिरी और 'कामायनी' की श्रद्धा चारों ही नारियाँ पुरुष जाति के लिए प्रेरणा की स्रोत हैं। चारों ही नारियों का चरित्र जमीनी हकीकत से जुड़ा है। वैसे प्रसाद की कहानियों के नारी चरित्र इस बात की प्रबल दावेदारी रखते हैं कि उनका भी समाज में अपना एक अस्तित्व है परंतु इस अस्तित्व मंे अकड़ एवं अपनी बात को मनवाने की जिद् न होकर नारी की समझ, मर्यादा, नैतिकता, सौम्यता, करुणामय व्यवहार एवं स्वयं के व्यक्तित्व से दूसरे को आकर्षित करने की शक्ति विद्यमान है। श्रद्धा जिस प्रकार मनु का सहयोग करती है उसी प्रकार सिरी समाज सेविका बन अपने कर्Ÿाव्य का पालन करती है। ऋचा धरती पर स्वर्ग की कामना करती हुई जाबाल से पुनः मिलने को प्रतिबद्ध होती है। 'कंकाल' की घण्टीमहिलाओं का पिछड़ापन और उनका दुःख दूर करना सबसे बड़ा कर्त्तव्य, सबसे बड़ी शिक्षा मानती है।

प्रसाद ने अपने नारी चरित्रों के माध्यम से समाज की उस स्थिति से अवगत कराया जहां कई विषमताएं, असमानताएं अपना भयावह दृश्य प्रकट कर रही थी। प्रसाद ने अपने कथा साहित्य में नारी को विविध संदर्भों में, विविध आयामों में दर्शाते हुए उसकी मनोदशा का यथार्थ चित्रण प्रकट किया। उनकी नारी जहां 'कामायनी' जैसे विस्तृत काव्य में आदर्श एवं स्वछंद गति से बड़ी है एवं अपने रूपाकर्षण से मनु को वशीभूत कर देती है तो मनु भी एक बार पथ से विमुख हो जाते हैं। इसी रूपाकर्षण से प्रेरित होकर मनु इड़ा पर बलात्कार करने का प्रयास करते हैं। तो वहीं प्रसाद की कहानियों में उनकी नारी पात्राएं कामुक, यौन इच्छा एवं पुरुष प्रेम को पाने की चाहत को ही अपना यथार्थ समझती हैं। 'कंकाल' तो समाज का एक ऐसी कंकाल है जो मात्र ढांचा रह गया है और जिसमें नैतिकता एवं मर्यादा

शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2320 – 0871
17 सितंबर 2015
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

जैसी विचार धाराएं एक सीमित दायरे में ही रह गयी हैं।

कुल मिलाकर प्रसाद ने नारी को प्राचीन भारतीय आदर्शों, छायावादी भावनाओं और रोमानी कल्पनाओं में बाँधकर एक ऐसा रूपाकार प्रदान किया है कि नारी उनके साहित्य में अर्ध सत्यों को लेकर ही अवतरित हुई लगती है। प्रसाद की नारी 'अन्य' के लिए समर्पण, सेवा और त्याग का जो जीवन जीती है वह पुरूष की दृष्टि से मोहक भले ही लगे, किंतु श्रद्धा और इड़ा के दो ध्रुवांतों के बीच नारी की कल्पना यदि उन्होंने सामाजिक संदर्भों में की होती तो प्रसाद की नारी आदर्श का झूठा भ्रम न पैदा करती। वस्तुतः प्रसाद के साहित्य में सबसे महत्वपूर्ण नारी वह जो अनादर्श, अज्ञान और अहं के कारण जीवन और जगत् में विपरीत गति से चलती है। वह नारी जीवन के सत्यों के अधिक निकट और जीवंत है। पंत जी की नारी छायावादी विचारधारा से कोसों दूर हो चुकी है। कवि अपने प्रगतिवादी विचारों में नारी जाति के लिए यत्र-तत्र उद्घोष करता ही नजर आता है। नवचेतनावादी अपनी रचनाओं में पंत जी ने नारी के उस यथार्थ को प्रस्तुत किया है जो आज की अपनी स्पष्ट स्थिति को बयां करता है। पंत जी नारी मुक्ति के प्रबल आकांक्षी थे तो वहीं नारी विमर्श को लेकर उनके विचार प्रगतिसूचक थे। 'लोकायतन' में पंत जी की नारी उन्मुक्त, स्वछंद गति से अपनी मर्जी की मालिक बन जाती हैं एवं उसकी अपनी एक जमीन है जिस पर वह स्वछंद गति से अपने सामथ्र्य के अनुरूप नाचना जानती है। जिस प्रकार कला केंद्र में युवक-युवतियों का देहाकर्षण एक-दूसरे को अपनी ओर आकर्षित करता है जिसका परिणाम नारी को मर्यादा के विपरीत आचरण जीने को प्रेरित करता है तो वहीं पुरुष जाति के लिए भी एक प्रश्न चिन्ह है कि वह भी अब वैवाहिक संबंधों को अधिक समय तक जीवित न रख पायेंगे। चूंकि पंत जी भी स्वयं वैवाहिक जीवन में रहने के आकांक्षी नहीं थे। वह वैवाहिक संस्था को निषेधमूलक मानते थे। क्योंकि शायद वह बंधनों में रहना नहीं चाहते थे। पंत जी आज के युग की भांति लीविंग रिलेशनशिप में जीना चाहते थे। इसी को उन्होंने अपने लोकायतन में विस्तृत आधार दिया। वह भी एक ऐसा जीवन चाहते थे जो स्वछंद, उन्मुक्त, प्रेममय, बंधनों से परे, रूपमय आकर्षण से परिपूर्ण यौवन एवं विलास की स्थिति को प्रकट करता हो।

निस्संदेह यह कहने में अतिशयोक्ति न होगी कि नारी स्वयं में तो एक है परंतु जब वह इस धरती पर आती है तो उसके कार्य के अनुरूप अनेकों अध्याय जुड़ते चलते हैं। कवि प्रसाद और श्री सुमित्रानंदन पंत दोनों ही छायावाद के सिद्धहस्त महारथी महाकवि रहे हैं परंतु जब वह नारी विषयक दृष्टि से सोचते हैं, लिखते हैं तो दोनों की विचारधाराएं एक दूसरे को उनके कार्य के अनुरूप कहीं जोड़ती है तो कहीं पृथक करती हैं। परंतु इस बात की वास्तविकता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि दोनों ही कवियों ने मध्यकालीन नारी विषयक संकुचित मान्यताओं का जोरदार खंडन किया, जहां एक ओर 'कामायनी' जैसी कालजयी कृति में नारी का आदर्श स्थापित किया गया है तो वहीं 'लोकायतन' भी इस बात से अछूता नहीं रह सका।

चूंकि नारी मुक्ति का अर्थ केवल देह मुक्ति ही नहीं बल्कि विचारों की मुक्ति, आत्मा और परम्परागत शोषण से मुक्ति है। आज नारी को पता है कि उसे अपना आकाश स्वयं ही पाना है, क्योंकि पुरुषों के आधीन रहकर वह या तो देवी

बनायी जायेगी या दासी, मानवी उसे कभी नहीं बनने दिया जायेगा, आज भी पुरुष नारी को पूर्ण स्वतंत्रता देने में हिचिकिचाता है। किन्तु उसे तो अब अपनी पूर्ण स्वतंत्रता चाहिए। अब उसे अपनी अपनी नियति बदलनी है। रोते-रोते सब कुछ चुपचाप नहीं सहना है, क्योंकि यह स्त्री -विमर्श का काम्य नहीं है। आज वह आत्मविश्वास से पूर्ण अपना व्यक्तित्व निर्माण कर आत्मनिर्भर हो गयी है, तो फिर क्यों वे पुरुषों के आधीन रहें। हर क्षेत्र में वे अपनी विजय पताका लहरा रही है। यही स्त्री विमर्श का काम्य है।

यह कहते हुए अतिशयोक्ति न होगी कि आज भी देश में कई समस्याएं प्रगति में बाधक बनी हुई हैं। इसमें कोई शक नहीं कि हमारे इस समय में तमाम और जटिल मुद्दों की ही तरह नारीवाद, स्त्रीवाद, नारी-विमर्श, नारी चेतना, नारी अस्मिता आदि विषय भी काफी उलझे हुए हैं। यह भी सच है कि कभी कुछ मायनों में नारी विषयक विभिन्न धारणाएं एवं स्थापनाएं अपने मूल कथ्य से विच्छिन्न करके निजी स्वार्थ को परोसने के लिए धड़ाधड़ इस्तेमाल की जा रही हैं। इसी तरह कभी-कभी शासन तले नारी-गरिमा के कथित दमन या विनाश पर घड़ियाली आँसू बहाए जा रहे हैं, तो नारी की स्थिति हमें मुख्यधारा की भ्रष्ट राजनीति का और भी भ्रष्ट स्वांग - सा प्रतीत होने लगती हैं।

## संदर्भ ग्रंथ


*1.जयशंकर प्रसाद; कामायनी, प्रसाद प्रकाशन, प्रसाद मंदिर, गोवर्द्धन सराय, वाराणसी 1978 ई.*

*2.वही; आँसू, वही 1980 ई.*

*3.वही; लहर, वही 1980 ई.*

*4.वही; झरना, वही 1981 ई.*

*5.वही; कानन-कुसुम भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद*

*6.वही; प्रेम पथिक प्रसाद प्रकाशन, वाराणसी सं. 2033 वि0-1976 ई*

*7.वही; महाराणा का महत्व, वही 1980 ई.*

*8.वही; करूणालय, वही 1979 ई.*

*9.वही; चित्राधार, भारती भण्डार, लीडर प्रेस इलाहाबाद 1974 ई.*

*10.वही; कंकाल, भारती भण्डार, लीडरर प्रेस इलाहाबाद, 13 वाँ संस्करण, सं. 2026*

*11.वही; तितली, वही, 15 वाँ संस्करण सं. 2035*

*12.वही; इरावती, वही, 6 ठा संस्करण सं. 2024*

*13.वही; छाया, वही, 5 वाँ संस्करण सं. 2025*

*14.वही; प्रतिध्वनि, वही, 7 वाँ संस्करण सं. 2025*

*15.वही; आकाशदीप, वही, 9 वाँ संस्करण सं. 2030*

*16.वही; आँधी, वही, 7 वाँ संस्करण सं. 2022*

*17.वही; इंद्रजाल, वही, 6 संस्करण सं. 2026*

*18.वही; चित्राधार, वही, 4 था संस्करण सन् 1974*

*19.वही; राज्यश्री, वही, 14 वाँ संस्करण सन् 1947*

*20.वही; विशाख, वही, 7 वाँ संस्करण सन् 1975*

*21.वही; जनमेजय का यज्ञ, वही,*

*22.वही; अजातशत्रु-प्रसाद प्रकाशन, वाराणसी, दूसरा संस्करण सन् 1975*

*23.वही; कामना, भारती भण्डार, इलाहाबाद, 9 वाँ संस्करण, सन् 1973*

*24.वही; स्कन्दगुप्त, वही, 18 वाँ संस्करण सन् 1979*

*25.वही; एक घूँट, वही,*

*26.वही; चंद्रगुप्त-प्रसाद प्रकाशन, वाराणसी 4 था संस्करण सन् 1978*

*27.वही; ध्रुवस्वामिनी, भारती भण्डार, इलाहाबाद*

*28.वही; काव्य, कला तथा अन्य निबन्ध-भारती भण्डार, इलाहाबाद छठा संस्करण, सं. 2026*

*29.सुमित्रानंदन पंत; वीणा, प्रथम संस्करण, 1927, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली*

*30.वही; ग्रंथि, वही, 1929, वही*

*31.वही; पल्लव, वही, 1926, वही*

*32.वही; गुंजन, वही, 1932, वही*

*33.वही; युगवाणी, वही, 1939, वही*

*34.वही; ग्राम्या, वही, 1940, वही*

*35.वही; स्वर्णकिरण, वही, 1940, वही*

36. वही; स्वर्णधूली, वही, 1947, वही
37. वही; युगपथ, वही, 1949, वही
38. वही; उत्तरा , वही, 1949, वही
39. वही; रजतशिखर, वही, 1952, वही
40. वही; शिल्पी, वही, 1952, वही
41. वही; अतिमा, वही, 1955, वही
42. वही; सौवर्ण, वही, 1956, वही
43. वही; वाणी, वही, 1957, वही
44. वही; कला और बूढ़ा चाँद, वही, 1959, वही
45. वही; लोकायतन, वही, 1964, वही
46. वही; किरण वीणा, वही, 1967, वही
47. वही; मुक्तियज, प्रथम संस्करण, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
48. वही; पुरूषोत्तम राम, वही, 1927, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
49. वही; पौं फटने से पहले, वही, 1967, वही
50. वही; पतझर (एक भाव क्रांति), वही, 1969, वही
51. वही; गीतहंस, वही, 1929, वही,
52. वही; लोकायतन, (संक्षिप्त संस्करण), वही, 1970, वही
53. वही; शंखध्वनि, वही, 1971, वही
54. वही; समाधिता, वही, 1973, वही
55. वही; आस्था, वही, 1973, वही
56. वही; सत्यकाम, वही, 1975, वही
57. वही; गीत अगीत, वही, 1977, वही
58. वही; संक्रांति, वही, 1977, वही

## सहायक ग्रंथ

1. अग्रवाल; डा. पुरूषोत्तम दास, धुरवस्वामिनी का शास्त्रीय विवेचन, जीवन ज्योति प्रकाशन, 3014, बल्ली मारान, दिल्ली-6, संस्करण, 1974
2. कृष्णन; डा. सर्वेपल्लि राधा, धर्म और समाज, राजपाल एण्ड संज, कश्मीरी गेट, दिल्ली
3. गर्ग; प्रतिभा- छायावादी कवियों की नारी भावना; प्रकाशक-जवाहर पुस्तकालय, सदर बाजार मथुरा, 1987
4. गुप्त; मैथिलीशरण- साकेत, संस्करण, 1956, प्रसाद प्रकाशन गोवर्द्धन सराय, वाराणसी
5. चतुर्वेदी; जगदीश्वर, सुधा सिंह, स्त्री अस्मिता साहित्य और विचारधारा, आनन्द प्रकाशन, कोलकाता प्रथम संस्करण 2004
6. चतुर्वेदी; डा. शंभूनाथ, आधुनिक कविता की यात्रा, सुलभ प्रकाशन, 17 अशोक मार्ग, लखनऊ, 1983
7. चातक; डा. गोविन्द, प्रसाद के नाटक: स्वरूप और संरचना, तक्षशिला प्रकाशन, 23/4762, अन्सारी रोड, दरियागंज
8. जायसी; मलिक मुहम्मद- जायसी ग्रंथावली, संपादक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पंचत संस्करण, संवत् 2008
9. जोशी; शांति- सुमित्रानंदन पंत-जीवन और साहित्य, खण्ड एक, प्रथम संस्करण, 1970, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
10. जोशी; शांति, सुमित्रानंदन पंत-ग्रंथावली (खंड-एक); द्वितीय संस्करण, 1980; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
11. जोशी; शांति, सुमित्रानंदन पंत-ग्रंथावली (खंड-दो); द्वितीय संस्करण, 1980; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
12. जोशी; शांति, सुमित्रानंदन पंत-ग्रंथावली (खंड-तीन); द्वितीय संस्करण, 1980; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
13. जोशी; शांति, सुमित्रानंदन पंत-ग्रंथावली (खंड-चार); द्वितीय संस्करण, 1980; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
14. जोशी; शांति, सुमित्रानंदन पंत-ग्रंथावली (खंड-पाँच); द्वितीय संस्करण, 1980; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
15. जोशी; शांति, सुमित्रानंदन पंत-ग्रंथावली (खंड-छह); द्वितीय संस्करण, 1980; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
16. जोशी; शांति, सुमित्रानंदन पंत-ग्रंथावली (खंड-सात); द्वितीय संस्करण, 1980; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
17. तनेजा; डा. सत्येन्द्र, हिंदी नाटक पुनर्मूल्यांकन, ग्रन्थम प्रकाशक, रामबाग, कानपुर-12
18. तुलसीदास-रामचरित मानस; गीता प्रेस, गोरखपुर, अष्टम बार, संवत् 2012
19. तिवारी; डा. ललित मोहन, सुमित्रानन्दन पंत का गद्य साहित्य, ज्ञानोदय प्रकाशन, सुमित्रा सदन, मल्लीताल, नैनीताल, प्रथम संस्करण, 1995
20. तिवारी; डा. रामचन्द, हिंदी का गद्य-साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, के 40/6 भैरवनाथ, वाराणसी-1
21. दुआ; श्रीमती सरला-आधुनिक हिंदी साहित्य में नारी, साहित्य निकेतन कानपुर
22. दुधनीकर; डा. एम0एस0, प्रसाद साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन, अलका प्रकाशन, किदर्व नगर, कानपुर, 205011
23. दिनकर; रामधारी सिंह-उर्वशी, चक्रवाल प्रकाशन, पटना-4, द्वितीय संस्करण, सन् 1964
24. दीक्षित; डा. सूर्यप्रसाद, प्रसाद साहित्य की अंतः चेतना, कलमघर प्रकाशन, जोधपुर, प्रथम संस्करण, 1973

25.(डा.) नगेन्द्र; सुमित्रानंदन पंत, नवम संस्करण, सं0 2016, साहित्य रत्न भंडार, आगरा
26.पालीवाल; कृष्णदत्त, हिंदी आलोचना का सैद्धान्तिक आधार, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज नई दिल्ली-2
27.पाठक; डा. मानवेन्द्र, प्रसाद-काव्य में ध्वनि तत्व, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1990
28.(डा.) पाण्डेय; उषा- मध्ययुगीन हिंदी साहित्य में नारी भावना, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली
29.पाण्डेय; गंगा प्रसाद, छायावाद के आधार स्तम्भ, लिपि प्रकाशन, ई 5/20 कृष्णानगर, दिल्ली-51, प्रथम संस्करण, 1971
30.पाण्डेय; सुधाकर, आधुनिक हिंदी साहित्य मूल्य और मान्यताएं, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1979
31.पिल्लै; एन.पी.- पंत छायावादी व्यक्तित्व और कृतित्व, प्रथम संस्करण, 1970, जयप्रकाश, लिंगम पल्ली, हैदराबाद-27
32.पिल्लै; कुट्टन- पंत काव्य में बिंब योजना, हिंदी बुक सेन्टर, नई दिल्ली
33.प्रेमशंकर; कामायनी का रचना संसार, भारती भंडार, लीडर प्रेस इलाहाबाद, 1977 ई0
34.प्रेमशंकर; प्रसाद का काव्य,राधाकृष्ण प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 1994
35.प्रसाद; जयशंकर- कामायनी, चतुर्थ संस्करण, 1978, प्रसाद प्रकाशन गोवर्द्धन सराय, वाराणसी
36.प्रसाद; रत्नशंकर, डा. गिरीश चन्द्र त्रिपाठी, प्रसाद के नाम पत्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1976
37.भटनागर; डा. सुषमा, नयी कविता में प्रेम-सम्बन्ध, प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली-6
38.मदान; इन्द्रनाथ, जयशंकर प्रसाद, चिंतन व कला, हिंदी भवन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1956
39.मल्होत्रा; डा. सुषमा पाल, प्रसाद के नाटक तथा रंगमंच, राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली
40.मालती; डा. के.एम., स्त्री विमर्श: भारतीय परिप्रेक्ष्य, वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-2
41.मिश्र; डा. सत्यप्रकाश, जयशंकर प्रसाद ग्रंथावली, भाग-1, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1, सं0 2010
42.वही; भाग-2, वही
43.वही; भाग-3, वही
44.वही; भाग-4, वही
45.बिष्ट; डा. शेर सिंह, सुमित्रानंदन पंत के साहित्य का ध्वनिवादी अध्ययन, ग्रंथायन, सर्वोदय नगर, सासनी गेट, अलीगढ़
46.वही; उत्तरांचल: भाषा एवं साहित्य का संदर्भ, इण्डियन पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, संस्करण-2004
47.सक्सेना; डा. द्वारिका प्रसाद, आँसू-भाष्य, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, प्रथम संस्करण, 1971
48.वही; कामायनी-भाष्य, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा-2, प्रथम संस्करण, 2009
49.वही; प्रसाद-दर्शन, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, प्रथम संस्करण 1969
50.वही; हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यास और उपन्यासकार, विश्वभारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली-2
51.सक्सेना; डा. सुनीता, महिला उपन्यासकारों की सामाजिक चेतना, आशा पब्लिशिंग कम्पनी, आगरा-282004, प्रथम संस्करण 2004
52.सिंह; डा. दशरथ, स्वचछंदतावादी नाटककार जयशंकर प्रसाद, सन्मार्ग प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली
53.सिंह; नामवर, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1955
54.सिंह; डा. रामकुमार, आँसू भाष्य, साहित्य रत्नालय, गिलिश बाजार, कानपुर-208012
55.शतपथी; डा. अर्जुन, मधुसूदन साहा, जयशंकर प्रसाद परिप्रेक्ष्य एवं परिदृश्य, पराग प्रकाशन, 3/114, कर्ण गली, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-32, प्रथम संस्करण 1989
56.शर्मा; डा. हरिचरण, कामायनी विमर्श, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005
57.शर्मा; डा. कृष्णदेव, प्रसाद के चार काव्य, रीगल बुक डिपो, दिल्ली-6
58.शर्मा; डा. श्रीपति, हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव, विनोद पुस्तक मन्दिर, हॉस्पिटल रोड, आगरा
59.शारदा; कृष्ण- आधुनिक हिन्दी काव्य पर अरविंद-दर्शन का प्रभाव, प्रकाशक-नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण, संवत- 2029 वि0
60.शाह; रमेश चन्द्र- छायावाद की प्रासंगिकता, प्रथम संस्करण, 1973 राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
61.शुक्ल; आ. रामचन्द्र-हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
62.(डा.) क्षेम चन्द्र-नारी; तेरे रूप अनेक, हिंदी साहित्य संसार, दिल्ली
63.श्रोत्रिय; प्रभाकर, जयशंकर प्रसाद की प्रासंगिकता, भारतीय ज्ञानपीठ, लोदी रोड, नयी दिल्ली-3, द्वितीय संस्करण 2004